उत्तराखंड को यदि उत्सवों, पर्वों और अनूठी सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आजकल कुमाऊं और गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में नंदा देवी महोत्सव की धूम मची हुई है। यह महोत्सव केवल कुछ दिनों के मेले या मौज मस्ती का प्रतीक नहीं है, बल्कि यहां के जनमानस पर इस महोत्सव का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रभाव भी देखने को मिलता है। उत्तराखंड में नंदा देवी सर्वत्र पूजनीय हैं, जो पूरे राज्य को एक सूत्र में बांधती हैं। आजकल पूरा उत्तराखंड नंदामय है। पुराणों में हिमालय की पुत्री को नंदा बताया गया है, जिनका विवाह शिव से होता है। हिमालय वैदिक काल से हेमवत नाम से भी जाना जाता है। हेमवती अर्थात हिमालय की पुत्री नंदा के कई प्रसंग पुराणों में हैं, इसलिए देवी का एक नाम हेमवती भी है। देवी भागवत मैं नंदा को शैलपुत्री के रूप में नवदुर्गा में से एक बताया गया है, जबकि भविष्य पुराण में नंदा को सीधे तौर पर एक दुर्गा बताया गया है।

दीपक नौगांई 'अकेला'
स्वतंत्र लेखक

एक सूत्र में बांधतीं मां नंदा देवी

- कुमाऊं में एक ओर नंदा देवी अन्नपूर्णा के रूप में जानी जाती है, वहीं दूसरी ओर हिमालयवासिनी होने के नाते युद्ध की देवी के रूप में भी पूजा की जाती है। यह बताना कठिन है कि उत्तराखंड में नंदा देवी का पूजन कब से शुरू हुआ है, लेकिन कुमाऊं में नंदा की पूजा का व्यापक प्रचलन चंद शासकों के काल में हुआ। वे नंदा को अपनी कुलदेवी मानते थे। 1670 ई. में चंद राजा बहादुर चंद बधानगढ़ के किले से नंदा देवी की स्वर्ण प्रतिमा को अल्मोड़ा लाए और उसे अपने मल्ला महल परिसर में प्रतिष्ठित किया। बाद में 1815 में अंग्रेजों ने नंदा देवी की प्रतिमा को मल्ला महल से वर्तमान नंदा देवी परिसर में स्थापित किया।
- अल्मोड़ा में आज जहां नंदा देवी मंदिर है, वहां 1690 में तत्कालीन राजा उद्योत चंद ने दो शिव मंदिर उद्योत चंदेश्वर तथा पार्वतीश्वर बनवाए। 1699 में राजा ज्ञानचंद भी बधानकोट से एक स्वर्ण प्रतिमा अल्मोड़ा लाए। 1760 ई. में राजा दीपचंद ने पार्वतीश्वर मंदिर का जीर्णोद्धार कराया और यह मंदिर दीप चंद्रेश्वर कहलाया, लेकिन आज यह दोनों मंदिर अपने पुराने उद्योत चंदेश्वर तथा पार्वतीश्वर नाम से ही जाने जाते हैं।
- अंग्रेजी शासन काल में इन मंदिरों से जुड़ी एक घटना काफी लोकप्रिय है। 1815 में तत्कालीन कुमाऊं कमिश्नर ट्रेल ने मल्ला महल में स्थापित नंदा देवी की मूर्ति को वहां से हटाकर उद्योत चंदेश्वर मंदिर में रखवा दिया। इसके कुछ दिनों जब कमिश्नर ट्रेल हिमालय में नंदा देवी की चोटी और एक यात्रा पर गए थे तो अचानक उनकी आंखों की रोशनी कम हो गई और उन्हें दिखाई देना बंद हो गया। कई चिकित्सकों को दिखाया पर कोई लाभ नहीं हुआ। कुछ लोगों की सलाह पर अल्मोड़ा लौटकर मां नंदा से क्षमायाचना की और मां नंदा का एक मंदिर बनवाया। उसके बाद उनकी आंखों ज्योति वापस लौट आई।
- चंद शासकों से पहले कत्यूरी शासक भी नंदा देवी को अपनी आराध्य देवी मानते थे। कत्यूरी शासकों के अधिकांश लेखों में मां नंदा देवी की स्तुति मिलती है। अल्मोड़ा में नंदा देवी की पूजा तांत्रिक विधि से की जाती है। चंद राजा तंत्र विद्या में पारंगत माने जाते थे। राजा आनंद सिंह तंत्र विद्या में विशेष ज्ञान रखते थे। उनकी मृत्यु के बाद तंत्रशास्त्र की पुस्तक 'चीनाचार' में से कुछ अंश उतार कर पूजा की जाती है। नंदा देवी को तारा शक्ति के रूप में पूजा जाता है और यह पूजा तंत्रिका विधि से की जाती है, जिसे 'आगमोक्त' विधि कहते हैं।
- नैनीताल के मल्लीताल में भी झील से लगा एक नंदा देवी का मंदिर है। पहले यह मंदिर उस स्थान पर था, जहां आज वोट हाउस क्लब है, लेकिन 1880 में आए विनाशकारी भूस्खलन से पूरा मंदिर झील में समा गया था। बाद में मोतीराम साह ने नया मंदिर बनवाया और उनके प्रयासों से ही 1903 में यहां नंदा देवी महोत्सव का प्रारंभ हुआ। उनकी मृत्यु पश्चात उनके पुत्र उदय साह ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। 1925 तक मोतीराम साह के परिवार वाले मेले का आयोजन करते रहे। 1926 से रामसेवक सभा ने मेले के आयोजन की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

पंचमी से शुरू हो जाती है महोत्सव की तैयारी

नैनीताल में नंदा देवी महोत्सव की तैयारी भाद्रपद की पंचमी से प्रारंभ हो जाती है। षष्ठी के दिन निकटवर्ती गांव से एक जुलूस और मंत्रोचार के साथ ढोल नगाड़े बजाते हुए कदली (केले) के वृक्षों को लाया जाता है। इन वृक्षों को नगर की परिक्रमा के बाद मंदिर के प्रांगण में रखा जाता है। सप्तमी के दिन मूर्ति निर्माण का कार्य प्रारंभ होता है। अष्टमी के दिन सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित मूर्ति को ब्रह्म मुहूर्त में मंदिर में स्थापित किया जाता है। नवमी के दिन कन्याकुमारी का भोग लगाया जाता है। दसवीं के दिन देवी का डोला नगर भ्रमण के लिए निकाला जाता है। सूर्यास्त के बाद देवी की मूर्ति को पाषाण देवी मंदिर के समीप नैनी झील में विसर्जित कर दिया जाता है। यह महोत्सव हमें मां नंदा के प्रति अटूट आस्था, विश्वास और भक्ति से सराबोर करता है।

साधक को श्राद्ध का भोजन नहीं करना चाहिए

अनिल सुधांशु
ज्योतिषाचार्य

पितृ पक्ष चल रहा है और हर कोई अपने पितरों के निमित्त अनेक प्रकार के पकवान बनाते हैं। श्राद्ध कर्म करने के बाद ब्राह्मणों, गरीबों या अन्य बाहरी लोगों को भोजन भी खिलाते हैं, लेकिन शास्त्रों के अनुसार श्राद्ध का भोजन हर किसी के लिए शुभ नहीं माना गया है, क्योंकि श्राद्ध का भोजन पितरों के नाम से बनाया जाता है, जो वासनामय, अर्थात रज-तम से युक्त होता है, इसलिए श्राद्ध का भोजन करना हर किसी के लिए शुभ नहीं होता। आखिर क्यों नहीं करना चाहिए श्राद्ध का भोजन।

पितृ पक्ष में केवल ऐसे भोजन को ही खाते हैं, पितृगण, अपने कुल गोत्र के परिवार में कर सकते हैं श्राद्ध का भोजन। धर्मशास्त्र में श्राद्ध का भोजन करने के विषय में कुछ नियम बताए गए हैं। अगर इन नियमों का पालन किया जाए, तो इससे होने वाले कष्टों से बचा जा सकता है अथवा उसका प्रभाव कुछ कम किया जा सकता है। श्राद्ध का भोजन किसी दूसरे के घर का नहीं ग्रहण करना चाहिए, लेकिन अपने कुल गोत्र के परिवार जनों में भोजन करने पर कोई दोष नहीं लगता। स्वाध्याय अर्थात अपने कर्मों का चिंतन करना, मनन की तुलना में चिंतन अधिक सूक्ष्म होता है। अतः चिंतन से जीव की देह पर विशिष्ट गुण का संस्कार दृढ़ होता है। सामान्य जीव रज-तमात्मक माया-संबंधी कार्यों का ही अधिक चिंतन करता है। इससे उसके सर्व ओर रज-तमात्मक तरंगों का वायुमंडल निर्मित होता है। यदि ऐसे संस्कारों के साथ हम भोजन करने श्राद्धस्थल पर जाएंगे, तो वहां के रज-तमात्मक वातावरण का अधिक प्रभाव हमारे शरीर पर होगा, जिससे हमें अधिक कष्ट हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति साधना करता है, तो श्राद्ध का भोजन करने से उसके शरीर में सत्वगुण की मात्रा घट सकती है। इसलिए आध्यात्मिक दृष्टि से श्राद्ध का भोजन लाभदायक नहीं माना जाता।

श्राद्ध का रज-तमात्मक युक्त भोजन ग्रहण करने पर, उसकी सूक्ष्म-वायु हमारी देह में घूमती रहती है। ऐसी अवस्था में जब हम पुनः भोजन करते हैं, तब उसमें यह सूक्ष्म-वायु मिल जाती है। इससे, इस भोजन से हानि हो सकती है। इसीलिए, हिन्दू धर्म में बताया गया है कि उपरोक्त कृत्य टालकर ही श्राद्ध का भोजन करना चाहिए। कलह से मनोमयकोष में रज-तम की मात्रा बढ़ जाती है। नींद तमप्रधान होती है। इससे हमारी थकान अवश्य मिटती है, पर शरीर में तमोगुण भी बढ़ता है। इसलिए प्रयास करें कि श्राद्ध पक्ष ये तेरहवीं आदि मृतकों के निमित्त बनाए गए भोजन को करने से बचना चाहिए।

भगवद गीता पितृ पक्ष के बारे में क्या कहती है

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं, 'आत्मा का न तो कभी जन्म होता है और न ही मृत्यु। आत्मा अजन्मा, शाश्वत, नित्य और आदि है। शरीर के मारे जाने पर भी वह नहीं मरती।' पितृ पक्ष के अनुष्ठान आत्मा को जीवन-मरण के दुष्चक्र से मुक्त करते हैं और उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

श्राद्ध में क्या भोजन बनाना चाहिए

श्राद्ध में खीर-पूरी के साथ जौ, मटर और सरसों से बना सात्विक भोजन बनाना चाहिए, जिसमें गाय के दूध, दही और घी का प्रयोग हो। साथ ही गंगाजल, शहद और तिल जरूर शामिल करें, इस दिन प्याज, लहसुन, मूली, बैंगन, उड़द की दाल से बने पकवान और बासी भोजन नहीं बनाना चाहिए।

क्या-क्या दान करें

यह समय पूर्वजों की आत्मा की शांति और उनकी प्रसन्नता के लिए दान-पुण्य करना अत्यंत शुभ माना जाता है। इस दौरान वस्त्र, छतरी, काले तिल, गुड़-नमक, चावल-दूध-चांदी जैसे दान विशेष रूप से फलदायी माने जाते हैं। ऐसा करने से पितरों की कृपा बनी रहती है और जीवन में सुख, समृद्धि व खुशहाली आती है।

श्राद्ध कर्म : पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का प्रतीक

डॉ. प्रीती अग्निहोत्री
प्रोफेसर
(संस्कृत विभाग)

पितृपक्ष के दौरान पितृ गण सूक्ष्म रूप से अपनी संतान के आस-पास उपस्थित रहते हैं। प्रत्येक वर्ष में एक बार पितृ पक्ष के पंद्रह दिन पूर्वजों की अदृश्य सत्ता से संवाद, उनका आशीष प्राप्त करने का अमोघ समय है। श्राद्ध कर्म पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का प्रतीक है, पितृपक्ष में श्रद्धा और तर्पण से पितरों को तृप्त किया जाता है। श्राद्ध कर्म धार्मिक अनुष्ठान के साथ-साथ पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता और स्मरण का प्रतीक है। पितृपक्ष में श्राद्ध, दान और तर्पण द्वारा पितरों को तृप्त किया जाता है, जिससे उनका आशीर्वाद प्राप्त होकर पारिवारिक व सामाजिक जीवन में संतुलन और सद्भाव स्थापित होता है। भारतीय संस्कृति में पूर्वजों का स्मरण और उनके प्रति सम्मान एक गहन परंपरा के रूप में स्थापित है। ब्रह्म पुराण, गरुड़ पुराण आदि ग्रंथों में श्राद्ध कर्म का विशेष महत्व बताया गया है। हर शुभ कार्य के आरंभ में माता-पिता और पितरों को नमन करने की परंपरा इसलिए है, क्योंकि उनकी कृपा और आशीर्वाद के बिना कोई भी कार्य पूर्ण फलदायी नहीं होता। शास्त्रों के अनुसार देवता भी तभी प्रसन्न होते हैं जब पितरों की तृप्ति होती है। श्राद्ध का अर्थ केवल भोजन, दान या कर्मकांड तक सीमित नहीं है। पितृ गण यह भी देखते हैं कि उनके वंशज कितनी श्रद्धा और भावनाओं के साथ उन्हें स्मरण कर रहे हैं। सच्चे मन से अर्पित की गई कोई भी वस्तु उन्हें प्रिय होती है और वे तृप्त होकर आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

पितृ पक्ष पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता और स्मृति का अवसर है। वर्ष में पंद्रह दिन पितरों के प्रति श्रद्धा-समर्पण, पिंड दान और उनके स्मरण के लिए निर्धारित हैं। लोक मान्यता है कि इन दिनों पितृ अपने-अपने वंशजों के घर सूक्ष्म रूप में उपस्थित रहते हैं और उनकी श्रद्धा से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं, इसलिए इस समय दान-पुण्य, तर्पण और स्मरण जैसे कर्मों को प्राथमिकता दी जाती है। अघोर पंत साधना से जुड़े साधक इस दौरान पूर्वजों की मृत आत्माओं से संपर्क स्थापित करते हैं। श्राद्धपक्ष का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को सांसारिक मोह-माया से कुछ समय दूर करके आत्मीय भाव से पूर्वजों के प्रति समर्पित करना है। श्राद्ध कर्म हमें यह स्मरण कराता है कि पूर्वजों की मेहनत और संस्कार ही हमारी आज की पहचान का आधार हैं। पितृपक्ष में पितरों को जल आदि देने से हम पितरों को तृप्त करते हैं, सच्चे मन से पितरों को अपनी श्रद्धा अर्पण करने से पितृ गण आशीर्वाद देते हैं, जिससे व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं का शमन होता है और पितृ कृपा से भाग्योदय, सुख-संपत्ति की प्राप्ति होती है। पितृपक्ष के पंद्रह दिन, पूर्वजों के साथ वर्तमान पीढ़ी को जोड़ने का अदृश्य सेतु है।

सप्ताह के प्रमुख व्रत

महालक्ष्मी व्रत से पाएं सुख-समृद्धि और सौभाग्य

भाद्रपद माह में शुक्ल पक्ष अष्टमी के दिन से श्री महालक्ष्मी व्रत आरंभ हो जाते हैं और आश्विन माह में कृष्ण पक्ष में अष्टमी तिथि को संपन्न होते हैं। माता लक्ष्मी को प्रसन्न करने और जीवन में सुख-समृद्धि प्राप्त करने के लिए श्री महालक्ष्मी व्रत किया जाता है। इस व्रत में मां लक्ष्मी की विधि विधान से पूजा-अर्चना करने से उनकी कृपा के साथ मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। इस व्रत में अन्न ग्रहण नहीं किया जाता है। महालक्ष्मी व्रत का 16वें दिन उद्यापन किया जाता है।

पूजा में 16 का विशेष महत्व

श्रीमहालक्ष्मी व्रत में 16का विशेष महत्व है। 16 बार तर्पण, 16 दीपक, 16 बोल की कहानी, 16 श्रृंगार, 16 दिन का व्रत, 16 दूर्वा, 16 डुबकी लगाने का विधान है। इस दौरान खट्टी और नमक वाली चीजों के सेवन की मनाही होती है। सुबह-शाम मां लक्ष्मी की पूजा-आराधना करें। महालक्ष्मी व्रत में व्रती के साथ परिवार के सदस्यों को भी तामसिक छोड़कर केवल सात्विक भोजन करना चाहिए।

14 सितंबर को व्रत का पारण

इस बार महालक्ष्मी व्रत 31 अगस्त से शुरू हुए थे और 14 सितंबर को समाप्त होंगे। महालक्ष्मी व्रत का पारण चंद्रमा को अर्घ्य देने के बाद अन्न ग्रहण करके किया जाता है। इस दिन पूजा स्थल की सफाई करके गणेश जी और नवग्रहों का पूजन करें, उसके बाद माता महालक्ष्मी की पूजा करके उन्हें 16 श्रृंगार की सामग्री अर्पित करें।

अध्यात्म

मौनव्रत

मनुष्य के ज्ञान, स्वभाव का स्तर उसकी वाणी से पता चलता है। वाणी अपनी मिठास, तर्क, क्षमता एवं भाव संवेदना से दूसरों प्रभावित ही नहीं करती, अपितु प्रतिकूल से अनुकूल बना लेती है। कुशल वक्ता जनमानस को बदलकर और उसे अपने विचारों के अनुकूल धारा में बहा ले जाते हैं। लोक व्यवहार में सफलता-असफलता का बहुत कुछ आधार उसके भाषण संभाषण स्तर के साथ जुड़ा रहता है। इसी कारण जिव्हा को इन्द्रियों की गणना में एक नहीं दो माना गया है। वही वाकशक्ति भी और वही स्वादेन्द्रिय रसना भी है। इसका शासन संपूर्ण व्यक्तित्व एवं संपर्क परिकर पर छाया रहता है। अध्यात्म क्षेत्र में वाक्सिद्धि का प्रयोजन मौन व्रत का अभ्यास करने से बन पड़ता है। निरंतर बोलते रहने से वाणी का प्रभाव क्षमता क्षीण होती है। अतएव विद्वतजन निरर्थक नहीं बोलते। सोच समझकर सीमित और अर्थपूर्ण शब्द कहते हैं, उनका थोड़ा सा भी बोलना घंटों बकवास करने की तुलना में कहीं ज्यादा प्रभावशाली होता है। मौन के विश्राम काल में इतना अवसर मिल जाता है कि पिछली गंदी आदतों को सुधारा- विचारा जा सके। मौनव्रत के द्वारा भावी कार्यकाल को सुगम बनाया जा सकता है। मौनकाल में विचारों की शक्ति सीमाबद्ध होती है। इसे इधर-उधर बिखेरने की अपेक्षा यदि वाक्शक्ति पर धार धरने में लगाया जा सके तो वह तीखी तलवार से भी अधिक सशक्त बनती है। मौन की पृष्ठभूमि में जप साधन ठीक प्रकार बन पड़ता है। ध्यान के लिए मौन व्रत अनिवार्य है। किसी दशा विशेष में प्राणशक्ति को नियोजित करने का अभ्यास करना हो तो उसका प्रथम चरण मौनव्रत ही हो सकता है। बांध खोलने पर जल का प्रचंड प्रवाह उछाल मारता है, यदि उसे सामान्य गति से बहने दिया जाए तो जल धारा सामान्य स्तर की ही बनकर रह जाती है। यही बात जिह्वा के संबंध में भी है। शक्ति संस्थानों में विचार के उपरांत वाणी का स्थान होता है। विचार सूक्ष्म हैं, वाणी स्थूल विचारों की परिधि को बेधकर किसी का भी अंतरंग पढ़ना कठिन है। मौन व्रत से उपासना की शक्ति भी कई गुना बढ़ जाती है और उस आधार पर निग्रहीत की गई जिह्वा जो कुछ कहती है, वह शुभ सत्य होकर रहता है। जिह्वा के कार्य क्षेत्र, लौकिक भी हैं और पारलौकिक भी। लोक व्यवहार में यह सबसे बड़ी क्षमता है। अध्यात्म में सत्संग विचार-विनिमय जिह्वा से ही संपन्न होते हैं। इन्हें मनन-चिंतन का प्रतीक स्वीकारना चाहिए। वाणी की सिद्धि प्राप्त करने के लिए मौन व्रत का ही अवलंबन लेना चाहिए। यदि किसी के लिए लंबी अवधि तक मौनव्रत न बन सके तो सप्ताह में एक दिन या दिन में दो-तीन घंटे की मौनव्रत रखना जीवन के लिए बहुत उपयोगी है।

रमन त्रिपाठी
लेखिका